National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(23): 47-50
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

विनय कुमार जैन
प्राकृत एवं जैनदर्शन विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

Correspondence:
विनय कुमार जैन
प्राकृत एवं जैनदर्शन विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

मरण एवं गुणस्थान का अन्तः सम्बन्ध - भगवती आरधना के संदर्भ में

विनय कुमार जैन

सारः-भारतीय संस्कृति ऋषि - मुनियों से जुडी हुई अध्यात्म प्रधान संस्कृति रही है, जिसमें अनेक धर्म तथा दर्शनों का समावेश है। सभी धर्म तथा दर्शनों में जन्म और मरण को लेकर कुछ विशिष्ट समानतायें हैं। जैसे जन्म महोत्सव मनाना एवं मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करना क्योंकि मृत्यु जीवन का यथार्थ सत्य है।अन्य धर्मों में समाधि:-वैदिक तथा बौद्ध आदि धर्म में समाधि मरण को स्वीकार किया है, कहा जाता है कि समाधि मरण से आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है, यह वैदिक सत्य है।तथा बौद्ध मतानुयायी समाधि मरण के बाद आत्मा का निर्वाण मानते हैं।

कुंजी- जैन धर्म में समाधि का स्वरूप,मरण का स्वरूप, जीवस्थान: गुणस्थान, मरण के भेद-प्रभेद

जैन धर्म में समाधि का स्वरूपः-जैन धर्म अनादिनिधन है जैन धर्म जिसका प्रवर्तन हर युग में तीर्थंकर करते हैं। धर्म चक्र चलाने हेतु दीक्षा धारण करते हैं एवं तप द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करके उत्तम समाधि (पंडित-पंडित मरण) मरण कर निर्वाण सुख प्राप्त करते हैं।

जैन धर्म में श्रावक और साधु अपने अणुव्रतों और महाव्रतों का पालन करते हुये मात्र समाधि पूर्वक मरण करने के लिये साधते हैं। प्रति क्षण वह अपने हर आवश्यक की पूर्णता इसी भावना से करते है कि हे भगवन मैं आपकी अर्चना करता हूं, पूजा करता हूं, वन्दना करता हूं, नमस्कार करता हूं, क्योंकि मेरे दुखों का क्षय हो,मेरे कर्मों का क्षय हो, बोधिलाभ हो।

आचार्य कुन्दकुन्द भगवान प्रतिक्रमण में कहते हैः-"अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुण सम्पत्ति होउ मज्झं।"[1]

अर्थः-आधि, व्याधि, उपाधि में समता धारण करना समाधि है।

"समाधिः- 'सम' शब्द का अर्थ एकाकार होना है। अर्थात् जिस प्रकार तैल, घी आटे में मिलाकर एकाकार हो जाते हैं उसी प्रकार शुभोपयोग एवं शुद्धोपयोग में मन की एकाग्रता होना समाधि है।"[2] आधि - मानसिक, व्याधि - शारीरिक, उपाधि - बाह्य अलंकरण से संबोधन। इन तीनो में माध्यमती रखते हुये जीवन के अवसान काल में देह का विसर्जन करना ही समाधि मरण है।

भगवान महावीर ने सकाम-मरण तथा अकाम-मरण, ऐसे मृत्यु के दो भेद किए हैं। अकाम-मरण तो बार-बार हुआ और होता ही जा रहा है, परंतु सकाम-मरण किसी विरल साधक का ही होता है। अकाम मरण से तात्पर्य है-मृत्यु को नहीं चाहता। तीव्र जिजीविषा के वश मृत्यु का नाम सुनते ही रोमांच हो जाना। हाय मृत्यु आ गई, अब मेरा क्या होगा? मेरा बाल-बच्चों का क्या होगा? कैसे भी मैं जीवित रहूं-ऐसा उपाय करो, ऐसी दवा दो, ऐसे अनुभवी डॉक्टर या वैद्य को बुलाओं-इस प्रकार दिलगीर हो जाना, अपने आपको असहाय महसूस करना, अकाम-मृत्यु के लक्षण हैं। बाल अज्ञानियों की प्रायः ऐसी ही मृत्यु होती है। वे रोते ही आते हैं और रोते ही जाते हैं। सुना है, अरबी के विख्यात शायर शेख सादी एक बार किसी बच्चे के जन्मोत्सव पर होने वाले प्रीतिभोज में सम्मिलित हुए। लोग हंसते-खिलते खाना खा रहे थे, उधर नवजात शिशु तीक्ष्ण स्वर से रो रहा था। इस स्थिति पर शेख सादी के दिमाग में एक भाव उभर आया। शायरी में बांधते हुए उन्होंने कहा-

जब तुम आये जगत में, जग हंसमुख तुम रोये।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हंसमुख जग रोये।।

परंतु रोते ही आना और रोते ही जाना जीवन-कला का सूचक नहीं है। अज्ञान का ही वह परिणाम है।

सकाम-मरण से तात्पर्य है, इच्छापूर्वक मृत्यु का वरण करना। वासनाओं से विमुक्त होकर मौन की गोद में प्रविष्ट होना। जैनागम कहता है-इहलोक की आशंसा, परलोक की आशंसा, जीवन की आशंसा, मरण की आशंसा और कामभोग की आशंसा मुझे मरण के समय न रहे। साधक संकल्पपूर्वक कहता है कि 'मा मज्झ हुज्ज मरणंते' अर्थात् ये उपर्युक्त वासनाएं-आशंसाएं मेरे परलोक-गमन के समय न रहें। महावीर का अद्‌भुत चिंतन है कि जीवनाशंसा की तरह मरण की आशंसा भी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि रोगादि कष्टों से घबराकर कुछ मरण की भी मांग करने लग जाते हैं। साधक को उस समय जाग्रत रहने की आवश्यकता है।

मरण का स्वरूप

मरण के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों ने अपने मत व्यक्त किए हैं, जिसका अर्थ 'मरण' या 'मृत्यु' ही किया है। अर्थात् मरण को समस्त शरीरधारी जीवों का प्रकृति माना गया है।[3] 'मरण' शब्द 'मृ' धातु से बना है, जो भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाकर बनाया गया है।[4] जिसका अर्थ है-प्राणों का परित्याग।[5] मरण, विगम, विनाश, विपरिणाम ये सभी एकार्थक हैं।[6] इसका दूसरा अर्थ एक प्रकार का 'विष' भी किया गया है।[7] जैन दर्शन में मरण के सम्बन्ध में कहा गया है **'अण्णाउगोदय वा मरदि य पुव्वाउणासे वा'** अर्थात 'वर्तमान आयु से भिन्न अन्य आयु का उदय आने पर पूर्व आयु का नाश होना मरण है।[8] अनुभूयमान आयु नामक पुद्गल का आत्मा के साथ विनष्ट होना मरण है।

धवला में आयु कर्म के क्षय को मरण का कारण माना है।[9] **'स्वपरिणामोपातस्यायुष इन्द्रियाणां बलानां च कारणंवशात्संक्षयो मरणम्'** अपने प्राणों से प्राप्त आयु का, इन्द्रियों का और मन, वचन व काय इन तीन बलों का कारण विशेष के मिलने पर नाश होना, मरण है।[10] मरण के दो रूप हमें मिलते हैं-प्रथम लोक प्रसिद्ध मरण, जो सामान्य व्यवहार में देखा जाता है। तथा दूसरा प्रतिक्षण आयु का क्षीण होना भी मरण ही है। जिसे क्रमशः तद्भव मरण एवं नित्य मरण कहते हैं।[11] आत्मा शरीर को छोड़कर दूसरे पर्याय या शरीर को धारण करता है, अतः जिसवर्तमानशरीर-पर्याय को छोड़ता है, वह मरण है। गीता[12] में मरण का अर्थ 'अकीर्ति' किया गया है **'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'।** सज्जन मनुष्य की अकीर्ति ही उसका मरण है। जिसके यश, गौरव, सम्मान, प्रतिष्ठा आदि न रहे, वह मरण से अधिक होती है। आत्मा के सम्बन्ध में कहा है कि 'जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त करता रहता है।'[13] यहां पर जीवात्मा द्वारा जो पुराने शरीर को छोड़ने की बात कही गई है, वही मरण है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आत्मा से शरीर के विच्छेद का नाम ही मरण है। जैन दर्शन में सात प्रकार के भय[14] का उल्लेख किया गया है, **'इयरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणाकस्सि भया'** उनमें एक मरण भय भी है। अतः यह शाश्वत सत्य है कि सभी जीव मरणधर्मा है।

जीवस्थान: गुणस्थान

प्राचीन श्वेताम्बर आगम साहित्य में कहीं भी गुणस्थान शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। समवायांग (14) में गुणस्थान के स्थान पर जीवस्थान शब्द आता है। सर्वप्रथम गुणस्थान शब्द का प्रयोग आचार्य कुन्दकुन्द के 'समयसार' तथा 'प्राकृत पंचसंग्रह'[15] व 'कर्मग्रन्थ'[16] में मिलता है। आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार में जीवों को गुण कहा है। उनके अभितमतानुसार चैदह जीवस्थान कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि की भावाभावजनित अवस्थाओं से निष्पन्न होते हैं। परिणाम और परिणामी का अभेदोपचार करने से जीवस्थान को गुणस्थान कहा है। गोम्मटसार में गुणस्थान को जीव-समास भी कहा है। षट्खण्डागम की धवलावृत्ति के अनुसार जीव गुणों में रहते हैं, एतदर्थ उन्हें जीव-समास कहा है। कर्म के उदय से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वे औदयिक हैं। कर्म के उपशम से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वे औपशमिक हैं। कर्म के क्षयोपशम से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वे क्षायोपशमिक हैं। कर्म के क्षय से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वे क्षायिक हैं। कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम के बिना जो गुण स्वभावतः पाया जाता है, वह पारिणामिक है। इन गुणों के कारण जीव को भी गुण कहा जाता है। जीवस्थान को पश्चात्वर्ती साहित्य में इसी दृष्टि से गुणस्थान कहा गया है।

नेमिचन्द्र ने संक्षेप और ओघ ये दो गुणस्थान के पर्यायवाची माने हैं।

कर्मग्रन्थ (4/2) में जिन्हें चैदह जीवस्थान बताया है उन्हें ही समवायांगसूत्र (14) में चैदह भूत-ग्राम की संज्ञा प्रदान की गयी है। जिन्हें कर्मग्रन्थ में गुणस्थान कहा गया है उन्हें समवायांग में जीवस्थान कहा है। इस प्रकार कर्मग्रन्थ और समवायांग में सिर्फ संज्ञाभेद है।

चैदह गुणस्थान-1. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान 2. सास्वादन सम्यक्दृष्टि गुणस्थान 3. सम्यक्मिथ्यादृष्टिमरण 4. अविरत गुणस्थान 5. देशविरति गुणस्थान 6. प्रमत्तसंयत गुणस्थान 7. अप्रमत्त संयत गुणस्थान 8. निवृत्तिमरण गुणस्थान 9. अनिवृत्तिमरण 10. सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान 11. उपशान्त मोह 12. क्षीणमोह 13. सयोगीकेवली 14. अयोगकेवली।

मरण के भेद-प्रभेद

साधारणतया लोकव्यवहार में ऐसा देखा जाता है कि अंतिम समय में किसी व्यक्ति को अधिक कष्ट भोगने पड़ते हैं, तो किसी को सहज ही चलते-फिरते मृत्यु आ जाती है। यह भिन्नता मरण के भेदों को स्पष्ट करती है। भगवती आराधना में 17 प्रकार के मरणों का उल्लेख[17] मात्र हुआ है, जो इस प्रकार हंै-मरण के 17 प्रकार-
1. आवीचिमरण 2. तद्भवमरण 3. अविधमरण 4. आदि अन्तमरण 5. बालमरण 6. पंडितमरण 7. आसण्णमरण 8. बालपंडितमरण 9. ससल्लयमरण 10. बलायमरण 11. वसट्टमरण 12. विप्पाणसममरण 13. गिद्धपुट्ठमरण 14. भक्तप्रत्याखनमरण 15. प्रायोपगमनमरण 16. इंगिनीमरण 17. वलीयमरण।

किंतु मुख्य रूप से 5 प्रकार के निम्नलिखित मरणों[18] को विस्तार से समझाया है- **'पंडिदपंडिमरणं पंडिदयं बालपंडिदं चेव।बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं चं'।**
1. पंडित-पंडित मरण।
2. पंडित मरण।
3. बाल-पंडित मरण।

4. बाल मरण।
5. बाल-बाल मरण।

1. पंडित-पंडित मरण

सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप की उत्कृष्टतम स्थिति में जीव पंडित-पंडितमरण को प्राप्त होते हैं। जिसका पांडित्य चतुर्विध आराधना से सम्यक् रूप से परिपूर्ण हो, ऐसे जीवों के मरण को पंडित-पंडितमरण कहते हैं। गुणस्थान की अपेक्षा से जब जीव बारहवें एवं तेरहवें अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे जीवों का मरण उत्कृष्ट कहा गया है **'पण्डितपण्डितमरणे खीणकसाया मरन्ति केवलिणो'**।[19] बारहवें गुणस्थान क्षीणकषाय से आस्रव के 5 हेतुओं में से मिथ्यात्व, अविरति व प्रमाद के साथ-साथ कषाय का भी अभाव हो जाता है। अतः मिथ्यात्व, अविरति एवं प्रमाद का सातवें से ऊपर के सभी गुणस्थानों में अभाव कहा गया है। तेरहवें गुणस्थान वाले जीवों में केवल योग की प्रवृत्ति पायी जाती है। 14वें गुणस्थान में योग का भी अभाव हो जाता है। अतः बारहवें गुणस्थान पर पहुंचा जीव अपनी देह का त्याग चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त करके ही करता है, क्योंकि क्रमशः बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थान वाले जीव का मरण नहीं होता, बल्कि वे जीवचौदहवें गुणस्थान को प्राप्त करके ही मरण को प्राप्त होते हैं। अतः क्षीणकशाय एवं सयोगीकेवली गुणस्थान में स्थित जीवों के मरण को पंडितपंडित मरण कहा गया है। यही उत्कृष्ट मरण है।

जिन्होंने राग-द्वेषरूप क्रोध, मान, माया व लोभ को नष्ट कर दिया, उन्हें क्षीणकषाय कहते हैं।बारहवें गुणस्थान से जीव क्रमशः तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में जाता है।तेरहवें गुणस्थान में पहुंचा हुआ जीव जब उत्कृष्ट विषुद्ध ध्यान (शुक्लध्यान) के आश्रय से पूर्णतः 'मनवचनकर्म' रूप व्यापारों को सर्वथा रोक देता है तब वह जीव अध्यात्म-विकास की पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। यह आत्मविकास की चरम अवस्था है। इसे ही अयोगकेवली कहते हैं।

2. पंडित मरण-

पंडित-मरण के प्रकर्ष से रहित जिसका पांडित्य होता है, उसे पंडित कहते हैं तथा उनका सल्लेखना पूर्वक मरण पंडित-मरण है। यह मरण उन साधुओं को होता है जो अपने आचरण या चारित्र को शास्त्र-सम्मत या आप्तपुरुषों के कहे अनुसार पालन करते हैं। भगवती आराधना में कहा गया है कि 'पादोपगमन, भक्तप्रतिज्ञा और इंगिणीमरण इस प्रकार पंडित मरण तीन प्रकार का है। वह शास्त्र में कहे अनुसार आचरण करने वाले साधु के होता है –

पायोपगमणमरणे भत्तपइण्णा य इंगिणी चेव।
तिविहं पंडितमरणं साहुस्स जहुत्तचारिस्स।'[20]

अतः कहा जा सकता है कि व्यवहार में, सम्यक्त्व में, ज्ञान में और चारित्र में पंडित जीव के मरण को पंडित-मरण कहते हैं।

पंडित-मरण के तीन भेद किये गये हैं-

1. पादोपगमन।
2. भक्तप्रतिज्ञा।
3. इंगिनीमरण।

पाद और उपगमन अर्थात् पैरों से उपगमन पूर्वक होने वाले मरण को पादोपगमन मरण कहते हैं। इसमें साधु न स्वयं अपनी सेवा करता है और न दूसरों से करवाता है। जिसमें अस्थिमात्र शेष रहता है, वही पादोपगमन करता है। 'प्राय' का अर्थ है सन्यास तथा उपवेशन का अर्थ है शरीर का क्षय। अतः सन्यासियों (साधुओं) के मरण का एक भेद इसे कहा गया है।

'भक्तप्रतिज्ञा' (भत्तापइण्णा) मरण में साधु स्वयं अपनी सेवा करता है और दूसरों से भी करवाता है। 'भक्त' का अर्थ है-सेवन किया जाना और 'पइण्णा' का अर्थ है-त्याग। अर्थात् जिसमें भोजन का त्याग किया जाए, वह भक्तप्रतिज्ञा है। यह दो प्रकार से किया जाता है।

1. सविचार भक्तप्रतिज्ञा।
2. अविचार भक्तप्रतिज्ञा।

यदि मरण सहसा उपस्थित हो तो अविचार भक्तप्रत्याख्यान किया जाता है, जबकि सविचार भक्तप्रत्याख्यान अर्ह, लिंग आदि चालीस पदों[21] द्वारा लिये जाने का विधान किया गया है।

इंगिनीमरण का अर्थ है अपने अभिप्राय के अनुसार होने वाला मरण। इंगिनी शब्द का तात्पर्य इंगित अर्थात् संकेत से है। इंगिनीमरण का इच्छुक साधु संघ से अलग होकर गुफा आदि में एकाकी आश्रय लेता है। इसमें वह अपनी सेवा स्वयं तो करता है, लेकिन दूसरों से नहीं करवाता। उसका कोई निर्यापक (सहयोगी साधु) नहीं होता। स्वयं अपना संस्तारक बनाता है और स्वयं ही परिचर्या करता है।

3. बालपंडित मरण

बालपंडितमरण का उल्लेख करते हुए भगवती आराधना में कहा गया है कि जो जीव विरताविरित नामक पंचमगुणस्थान को प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे जीव ही बालपंडितमरण को प्राप्त होते हैं **'विरदाविरदा जीवा मरन्ति तदियेण मरणेण अविदरसम्मादिट्ठी मरंति बालमरणे चउत्थम्मि'**।[22] विरताविरत नामक पंचमगुणस्थानीजीवों में मिथ्यात्व का अभाव एवं अज्ञान की आंशिक विद्यमानता रहती है। इसीलिये इसे देशविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान भी कहते हैं। बाल एवं पंडित दोनों की प्राप्ति के कारण इसमें आंशिक अज्ञान व स्थूल हिंसा आदि से विरतिरूप चारित्र व दर्शन दोनों होते हैं। यह मरण देशविरत चारित्रधारी जीव के होता है।

4. बालमरण-

चतुर्थ गुणस्थान वाले जीव, जिसमें मिथ्यात्व का अभाव, किंतु अज्ञान, प्रमाद, कषाय और योग का सद्भाव होता है, बालमरण को प्राप्त होते हैं। बाल का अर्थ है अज्ञान। अर्थात् अविरतसम्यग्दृष्टि जीव का मरण बालमरण कहलाता है **'अविदरसम्मादिट्ठी मरंति बालमरणे चउत्थम्मि'**।[23] इस गुणस्थान में मिथ्यात्व अवस्था युक्तआत्मा अनुकूल संयोगों से अर्थात् कारणों की विद्यमानता से मोह का प्रभाव कुछ कम होने पर जब विकास की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न करती है, तब उसमें तीव्रतम राग-द्वेष को थोड़ा भेद करने वाला बलविशेष उत्पन्न होता है। अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान अविरतसम्यग्दृष्टि आत्मा की वह अवस्था है, जिसमें मोह की शिथिलता के कारण सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् विवेक तो ह ंता है, किंतु सम्यक्चारित्र का अभाव रहता है। विचारशुद्धि की विद्यमानता होते हुए भी आचारशुद्धि का असद्भाव होता है। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तपरूप आराधना में सम्यक्चारित्र से रहित जीव की मृत्यु को बालमरण कहते हैं।

5. बालबाल मरण

मिथ्यात्व, अज्ञान (अविरति), प्रमाद, कषाय एवं योग के सद्भाव रूप मिथ्यादृष्टि जीवों का मरण बालबालमरण कहा जाता है। दर्शन मोहनीय के आधार पर ही प्रथम गुणस्थान का नाम मिथ्यादृष्टि रखा गया है। यह आत्मा की सबसे अधस्तम अवस्था है। लोभ की प्रबलता के कारण से आध्यात्मिक स्थिति बिलकुल

गिर जाती है। वह जीव मिथ्यादृष्टि अर्थात् विपरीत श्रद्धा-ज्ञान के कारण राग-द्वेष के वशीभूत हो अध्यात्म या तात्त्विक सुख से वंचित रहता है इसीलिये कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि जीव पंचम बालबालमरण को प्राप्त होते हैं **'मिच्छादिट्ठी य पुणो पंचमए बालबालम्मि'**।[24] भगवती आराधना में मिथ्यादृष्टि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सूत्र (शास्त्र) से प्रथम गुरु के उपदेश से विपरीत ग्रहण किए अर्थ को सम्यक् अविपरीत रूप से अन्य आचार्यों द्वारा दिखलाए जाने पर भी जब वह श्रद्धा नहीं करता उस समय से वह जीव मिथ्यादृष्टि बन जाता है **'सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जतं जदा ण सद्दहदि।सो चेव हवई मिच्छादिट्ठी जीवो तदो पहुदि'**।[25] अतः यही मिथ्यादृष्टि जीव जब मरण करता है तब उसके मरण को बालबाल मरण कहते हैं। बाल का अर्थ है-अज्ञान। अर्थात् जिसमें अज्ञान ही अज्ञान हो, वे मिथ्यादृष्टि जीव हैं।

निष्कर्ष मानसिक दुःखों को आधि कहते हैं, शारीरिक कष्टों को व्याधि और बाह्यसंयोगकृत उपद्रव को उपाधि कहते हैं और इन तीनों से रहित आत्मस्वभाव में समा जाने को समाधि कहते हैं और समाधि के साथ होने वाले मरण को समाधिमरण कहा जाता है। समाधिमरण का दूसरा नाम सल्लेखना है।समाधिमरण के पर्यायवाची शब्द-संलेखना, संथारा, समाधिमरण, पण्डितमरण, सकाममरण अन्तःक्रिया, उत्तमार्थ, उद्युक्तमरण।

मणियों में वेडूर्यमणी, सुगंधित पदार्थों में गोशीर्ष चंदन, रत्नों में वज्र, श्रेष्ठ पुरुषों में अरिहन्त, महिलाओं में तीर्थंकर की माताएं, वंशों में तीर्थंकर वंश, कुलों में श्रावककुल, गतियों में सिद्धगति, वंशों में तीर्थंकर वंश, कुलों में श्रावककुल, गतियों में सिद्धगति, सुखों में मुक्तिसुख, धर्मों में अहिंसाधर्म, मानवीय वचनों में सन्तवचन, श्रुतियों में जिनवचन, सिद्धियों में सम्यक् तत्त्वरूप आत्मगुण की सिद्धि, ध्यानों में शुक्लध्यान, चारित्रों में यथाख्यातचारित्र, ज्ञानों में केवलज्ञान श्रेष्ठ है, उसी तरह साधनाओं में समाधिमरण साधना श्रेष्ठ है।समाधिमरण को तीर्थंकरदेव प्रणीत साधना एवं सभी मरणों में श्रेष्ठ मरण कहा गया है। श्वेतकमल, कलश, स्वस्तिक आदि सभी मंगलों में समाधिमरण को प्रथम मंगल माना गया है।समाधिमरण को साधकों के लिए कल्याणकारी एवं आत्मोन्नति का सर्वोत्ताम साधन (मार्ग) माना गया है।समाधिमरण देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। तीनों लोकों के बत्तीस देवेन्द्र भी एकाग्रचित इसकी कामना करते हैं।

संन्दर्भ ग्रंथ

- भगवती आराधना, आचार्यश्री शिवार्य, जैन सरोवर समिति, जयपुर
- श्री मरणसमाधि (प्रकीर्णक) सूत्रम्, सम्पादक, आनंदसागरसूरीश्वर, श्री आदमोदय समिति, कार्यवाहक, झवेरी वेणीचंद सूरचंद, 1927
- समाधिमरण या सल्लेखना, डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 2015
- श्रावक संबोध, आचार्य तुलसी, जैन विश्व भारती, लाडनूं
- समाधिमरण, डॉ. रज्जनकुमार, प्रो. सागरमल जैन, डॉ, विजयकुमार, पाश्र्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 2001
- आराधना पताका में समाधिमरण की अवधरणा, प्रतिभाश्रीजी, सागरमलजी जैन, प्राच्यविद्यापीठ, शाजापुर, 2010
- समाधिमरण पत्र पुंज, पंडिडत गणेशप्रसादजी वर्णी, सिं. कस्तुरचन्द्र नायक, जबलपुर?, वीर नि. सं. 2464
- मरणकण्डिका, आचार्य अमितगति, जीनमति माता
- जैन परम्परा में सल्लेखना, प्रो. जिनेन्द्र जैन, जैन अध्ययन एवं सिद्धान्त शोध संस्थान, जबलपुर, 2009
- संथारा, समाधिमरण की कला, रूपचन्द सेठिया, लिंक स्पाइसेन्स इण्डिया, सूरत, 2016
- जैन आचार मीमांसा, आचार्यश्री देवेन्द्र मुनि, श्री तारक गुरु जैन, ग्रंथालय, उदयपुर,, 1995
- जैन तत्त्व विद्या, मुनि प्रमाणसागर,
- शोधालेख, समाधिमरण (मृत्युवरण): एक तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन, प्रो.सागरमल जैन

संन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य कुन्दकुन्द भगवान प्रतिक्रमण
2. भगवती आराधना पृ. 55, गाथा 25 की विजयोदया टीका
3. मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्- रघुवंष, 8/87
4. आप्टे- संस्कृत-हिंदी कोष (मृ.भावे ल्युट्) पृ. 777
5. भगवती आराधना (विजयोदया टीका) पृ. 49, गाथा 25 की टीका,
6. वही, पृ. 49
7. आप्टे- संस्कृत-हिंदी कोष, पृ. 777
8. भगवती. आराधना.(विजयोदया टीका) पृ. 50
9. आयुषः क्षयस्य मरणहेतुत्वात्। - धवला
10. सर्वार्थसिद्धि, पृ. 280
11. जैनेन्द्र सिद्धांत कोष (भाग 3)- पृ. 278
12. भगवतद्गीता, 2/34
13. वही, 2/22
14. मूलाचार, गाथा 53
    सात भय हैं-
    1. इस लोक का भय 2. परलोक का भय
    3. अरक्षाभय 4. अगुप्तिभय
    5. मरण भय 6. वेदनाभय
    7. आकस्मिक भय
15. 'समयसार' तथा 'प्राकृत पंचसंग्रह', 1/3-5
16. 'कर्मग्रंथ', 4/1
17. भग. आरा. की टीका मे वर्णित 17 प्रकार के मरणों के नाम इस प्रकार हैं-
    अवीचिमरण, तद्भव मरण, अवधिमरण, आदि-अंतमरण, बालमरण, पण्डितमरण, आसण्णमरण, बालपंडित मरण, ससल्ल मरण, बलयामरण, वसट्ट मरण, विप्पाणस मरण, गिद्धपुट्ठ, भक्तप्रत्याख्यान मरण, प्रायोगमन मरण, इंगिणी मरण, केवली मरण।
18. भगवती आराधना - गाथा 26
19. वही गाथा 27
20. भगवती आराधना - गाथा 28
21. वही, गाथा 66-69
22. वही, गाथा, 27, 29
23. भगवती आराधना - गाथा 29
24. वही, गाथा 29
25. वही, गाथा 32